# 7. कार्य करने और कार्य से निवृत्त होने की कला

**(The Art of Enjoying work and Leisure)**

आपने देखा होगा कि बहुत-से मनुष्य ऐसे भी होते हैं जो मामूली-सा कार्य होने पर भी अति व्यस्त और भारी हुए-से दिखायी देते हैं। बहुत कम ही लोग ऐसे होते हैं जो कार्य होने के बावजूद भी फ़ारिग़ मालूम होते हैं और निश्चिन्त तथा कार्य से निवृत्त दिखायी पड़ते हैं। पुनश्च, प्रायः मनुष्य जब किसी कार्य में प्रवृत्त होते हैं तो वे उसमें इतने लिपायमान हो जाते हैं कि फिर उनके लिए उपराम होना भी मुश्किल हो जाता है। जैसे कोई मक्खी शहद में मुँह डालने के अतिरिक्त टाँगें भी डाल दे और फिर उसी शहद से चिपक कर वहीं प्राण छोड़ देती है। ऐसे कम ही लोग होते हैं जो स्वेच्छानुसार अभी-अभी प्रवृत्त होना और अभी-अभी निवृत्त होना (The Art of Attachment and Detachment) जानते हैं। वे कार्य को पूरे उत्तरायित्व से करते हैं परन्तु लगता ऐसे है जैसे कि वह कार्य उनके लिए कोई खेल-कूद हो अथवा मनोबहलाव का कोई साधन हो। उनको कार्य करते देखकर ऐसा कभी नहीं महसूस होता कि वे कार्य के बोझ से दबे जा रहे हैं अथवा उससे बहुत तंग हैं या मायूस हैं या किसी द्वारा मजबूर होने के कारण कर रहे हैं। केवल कुछ गिने-चुने लोग ही कार्य करते समय ऐसे दिखायी देते हैं जैसे कि उनमें सम्पूर्ण आत्म-विश्वास हो, उस कार्य पर उनका पूर्ण काबू हो और उसके परिणाम के बारे में उन्हें रिंचक भी चिन्ता न हो। यद्यपि वे उस कार्य को सुचारु रूप से करने के लिए पूर्ण रूप से सतर्क और प्रयत्नशील होते हैं और अन्त तक अपना पुरुषार्थ नहीं छोड़ते। केवल कर्मयोगी ही ऐसे हो सकते हैं। गीता में तो एक जगह पर स्पष्ट कह भी दिया गया है कि कर्म-कौशल्य का नाम योग है। इसके अतिरिक्त योगी ही के जीवन की तुलना कछुए से की जाती है क्योंकि कछुए में यह ख़ूबी होती है कि वह समय पर कार्य में प्रवृत्त भी होता है और जब चाहे कर्मेन्द्रियाँ समेटकर कार्य-निवृत्त भी हो जाता है।

विचार करने पर मालूम होता है कि इस कला के लिए मनुष्य में मुख्य रूप से छः बातों का होना आवश्यक है— (1) कार्य को समेटने की शक्ति (2) विस्तार करने की शक्ति (3) सभी कार्यों में कुशलता प्राप्त करने अर्थात् 'आलराउण्डर' (All-rounder) बनने का प्रयास (4) सृष्टि रूपी ड्रामा के पट्टे पर कायम रहना (5) यह सोचना कि यह कार्य तो मैंने असंख्य बार किया है, यह कोई बड़ी बात या नयी बात नहीं है (6) आत्म-विश्वास अर्थात् यह निश्चय कि हम तो सर्वशक्तिमान परमात्मा के बच्चे हैं, यदि यह कार्य हमसे नहीं होगा तो और किससे होगा? सफलता तो हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है, हम हिम्मत करेंगे तो ईश्वर अवश्य ही हमारी मदद करेगा।

परन्तु ऊपर जिन छः बातों का मानव के जीवन में होना आवश्यक माना गया है, वे सभी ज्ञान-निष्ठ योगी के ही जीवन में हो सकते हैं क्योंकि वह ही ज्ञान के आधार पर यह समझता है कि सृष्टि रूपी चक्राकार ड्रामा में मैंने यह पार्ट असंख्य बार बजाया है। इसलिए वह हल्का होकर तथा आत्म-विश्वास से और इस निश्चय से उसे कर डालता है कि जैसे कल्प पहले यह कार्य किया था हूबहू वैसे ही अब भी यह हो ही जायेगा, इसमें रिंचक भी संशय नहीं है। अतः वह सदा कार्य करते हुए भी उपराम, व्यस्त होते हुए भी कार्य-निवृत्त प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त परमपिता परमात्मा से योगयुक्त मनुष्य ही कार्य की सफलता में संशय न करके और स्वयं को ईश्वरीय मदद का पात्र मानकर हर्षित मनसा से अर्थात् कार्य को मनोबहलाव का एक साधन मानकर तथा उसे अपना कर्त्तव्य जानकर ख़ुशी और स्फूर्ति से उसे कर डालता है। स्वयं को सर्वशक्तिमान का बच्चा निश्चय करने के फलस्वरूप उसमें आत्म-विश्वास सदा बना रहता है और इसलिए उसका मन दुविधा में नहीं पड़ता है, एकाग्रता से कार्य कर डालता है और बिगड़े हुए कार्य को भी अपने सरल स्वभाव से सरल, सहज तथा सफल कर डालता है। अतः योग द्वारा ही जीवन में इस कला का भी विकास होता है।

***